ध्रुपद एक गायकी

डॉ0 स्वाति शर्मा
असि0 प्रोफेसर, संगीत विभाग
आर0जी0 (पी0जी0) कॉलिज, मेरठ
Email: dr.swatisharmagy@gmail.com

प्राप्तिः 12.02.2021
स्वीकृतः 05.03.2021

सारांश

प्रारम्भ में भगवान की स्तुतियों एवं कीर्तनों का गायन संस्कृत भाषा में किया जाता है। देशी एवं प्राकृत भाषाओं के प्रचार के साथ–साथ भक्ति गायन अन्य भाषाओं में भी होने लगा और इन्हीं भक्ति गीतों को ध्रुपद कहा गया। ध्रुवपद गायकी का आविष्कार लगभग 14वीं शताब्दी में हो चुका था। संगीत सम्बन्धी शास्त्रों का अध्ययन करके ज्ञात हुआ कि ध्रुवपद शैली प्रबन्ध से ही उद्भूत थी क्योंकि ध्रुव का अर्थ स्थिर, व्यवस्थित व निश्चित। इसलिये ध्रुवपद का अर्थ है वह गीत जिसमें पद या शब्द भली–भाँति एक विशेष रूप या आकार में स्थित है। 15वीं शताब्दी से पूर्व ध्रुवपद का प्रयोग था। उसके रूप के बारे में कुछ भी कहना कठिन है। परन्तु 'पदों' के व्यवस्थित रूप में इसका अस्तित्व नाट्यशास्त्र के समान ही प्राचीन रूप लिये था।

प्रस्तावना

वास्तव में ध्रुवपद बंदिशों का साहित्यिक पक्ष स्वाभाविक रूप से सुन्दर, प्रभावपूर्ण, ईश्वर तथा विशिष्ट देवी–देवताओं की स्तुति व आराधना से युक्त बंदिश के रूप में था तत्पश्चात् ध्रुपद में प्रकृति व ऋतुओं का वर्णन, सम्राटों एवं राजाओं की प्रशंसा से युक्त बंदिशें भी देखने में आईं। प्राचीनकाल से भारत में गायन–वादन के मुख्यतः स्रोत धार्मिक कार्य ही रहे हैं। वैदिक काल में 'ऋग्वेद' की ऋचाओं का गायन स्वरालापों के साथ हुआ करता था, जिसको 'सामगान' कहते हैं। इसी से हमारे संगीत का आरम्भ हुआ। आहुति मंत्रों द्वारा देवताओं का स्वागत एवं स्तुति स्वर लयन्वित आलापों के साथ करने की प्रथा प्राचीनकाल से आज तक हमारे यहाँ प्रचलित हैं। किसी व्यक्ति–विशेष के लिए जो स्वागत गान के रूप में प्रस्तुत करते हैं, सामगान का भी यही उद्देश्य था। ताने, मुरकिया, खटके आदि ख्याल, ठुमरी और टप्पा में प्रयुक्त होने वाले अलंकार, ध्रुवपद में नहीं होने चाहिये यह भी प्रथा है। स्वर ताल एवं पद के समन्वय की जो गुंजाइश ध्रुपद परम्परा में है। वह कहीं भी मिलनी दुर्लभ है, और यह कलाकार की कुशलता पर निर्भर करता है कि वह इस अवदान का कहाँ तक लाभ उठा पाता है।

ध्रुवपद गायन में गायक को एक ओर जहाँ स्वर, ताल के संयोजन के साथ पद की शुद्धता एवं सौन्दर्य के प्रति सचेष्ट रहना चाहिये, वहीं वादक को भी उचित संगीत के द्वारा इस अभीष्ट की पूर्ति में सहयोग रहना चाहिये।

ध्रुपद गायन में गला नहीं हिलाया जाता है और न तानें ही ली जाती हैं। शब्दों को और स्वरों को गम्भीर और सही उच्चारण के साथ कहा जाता है। ध्रुवपद में मुर्की, फंदा, सपाट तान आदि नहीं होते हैं। ध्रुपद गम्भीर शैली है जिसके प्रभाव केवल सच्चे स्वरों के लगाने में ही है। शब्दों को सच्चे ढंग से सुर में कहना और गमक इत्यादि का प्रयोग कलात्मक ढंग से करना ध्रुपद गायक का धर्म है। स्वरों और शब्दों को कहने के लिये लम्बी साँस की भी जरूरत होती है।

ध्रुपद गायन शैली के लिए अधिकतर जिन तालों के नाम लिए जाते हैं, उनका प्रयोग मंदृग वाद्य पर होता आया है जैसे चौताल, सूलताल, मत्तताल, झपताल (ध्रुपद शैली में गाया जाने वाला झपताल का गीत सादरा कहलाता है) आदि तालें बजाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त तीव्रा, ब्रह्मताल, लक्ष्मी ताल, मत्तताल, गणेश, शिखर, सवारी, रूद्र आदि भी ध्रुपद के अनुकूल ताले हैं। परन्तु इन तालों में बहुत ही कम रचनाएँ दिखाई पड़ती हैं। पहले ध्रुपद गायन एक सौ बीस तालों में होता था जैसे हंसताल, राजमार्तण्डताल, चंचक, कमाल मण्डिका, चन्द्रका, गजझंपा, हथलीला, सरस्वती, लक्ष्मी निधि आदि।ध्रुवपद गायकी के प्रमुख अंगों की जानकारी ध्रुवपद गायन को तीन भागों में बाँट सकते हैं 1. नोमतोम प्रधान आलापचारी या रागालाप, 2. बंदिश या पद गायन और 3. लयकारी।

इसके अतिरिक्त कुछ प्रमुख अंग हैं –

मींड – किसी स्वर में नीचे या ऊपर के दो तीन या अधिक स्वरों तक आवाज को बिना तोड़े हुए गाने की क्रिया उदाहरणार्थ – रागयमन प म ग रे।

श्रुतिगान : आलाप गायन में एक स्वर से दूसरे स्वर तक शीघ्रता से नहीं पहुँचते, अपितु लम्बी सांस से उन दो स्वरों के बीच प्रच्छन्न बारीक ध्वनियों को, जिनमें राग के विवादी स्वर की ध्वनियाँ भी निहित हैं, इस तरह से लगाते हैं कि अटपटे ढंग से हटकर वे माधुर्य में अवतरित हो जाती हैं, यह तो प्रत्यक्ष गायन द्वारा खूबी से बताया जा सकता है फिर भी जैसे दरबारी में ध ध नि नि सां।

कण एवं अल्पत्व बहुत्व – आलाप की बढ़त में क्रमशः किसी एक स्वर की बढ़त के बाद आगे के स्वर का न्यास एकदम नहीं करते हैं; अपितु उसे 'कण' यानि आगे के स्वर का हल्का स्पर्श करते हुए करते हैं। फिर उस स्वर पर स्पष्टता से रूकते हुए आलाप करते हैं। उदाहरण – यमन राग में 'ग' के न्यास बाद 'म' इस क्रिया से न्यास करेंगे जैसे नि – – – – रे ग – – – – रे – – – – ग – रे – ग – – म« ग – – – ग – – रे – – सां। इसी स्वर पर स्पष्टता से न्यास करने को बहुत्व के अन्तर्गत रखेंगे।

.प्रकंपन और गमकें – किसी राग में दो, तीन, चार स्वरों को एक–दूसरे से स्पर्श करते हुए आंदोलित आवाज के साथ गायन करने को प्रकंपन कहते हैं, जैसे यमन में सा नि – – ग रे – – ग – – ग रे – – ग – – ग – – रे – – सा। इस चिन्ह (–) में भी पहले स्वरों का स्पर्श रहेगा। इसी को थोड़ा और झुलाते हुए गाने से 'मदअंग' कहलायेगा।

लहक – नोम–तोम का आलाप करते हुए लहर की तरह मधुरता व कोमलता के साथ

मंद्र तक पहुँचते हुए गायन करना 'लहक' कहलाता है।

हुडक – कुछ वीरतापूर्ण प्रकृति के साथ 'नोम्–तोम्' की बोलतान लेते हुए गायन जो सर्वदा गमक युक्त होगा जैसे यमन में ग रे ग रे सा सा नि ध नि ध म« प म« ग रे सा। रेखांकित स्वरों को धक्का देते हुए जोरदार आवाज के साथ प्रारम्भ किया जाता है। इन स्वरों में 'नोम–तोम्' के बोल ही गाए जायेंगे।

स्फूर्ति–अंग – बोल आलाप लेते समय बीच–2 में बोल–तानों का प्रयोग करते हुए आलाप गायन जैसे – नि़ – रे – ग –, ग ग रे सा नि़ – रे –– आदि।

नोम–तोम् – ध्रुवपद भी आलापचारी में 'अ' कार के साथ 'त, न, री, द, ना आदि निरर्थक शब्दों को ही स्वरों से संबद्ध कर बोलालाप या बोल तानें गाई जाती हैं।

ध्रुवपद गायन मध्यकाल में अधिक प्रचलित था। अनेक संस्कृत ध्रुवपदों का गायन श्रेष्ठ श्रेणी का, गायन समझा जाता था। इसलिए ध्रुवपद गायकों को तब 'कलावत' की संज्ञा दी गई थी। मुस्लिम शासन एवं संस्कृति के प्रभाव के कारण ध्रुवपदों की काव्य भाषा संस्कृति के स्थान पर तत्कालीन प्रचलित देशी एवं प्रान्तीय भाषाएँ हो गईं। ध्रुवपदों के काव्य की भाषा आज अधिकता हिन्दी ब्रज एवं उर्दू है। ध्रुवपदों के काव्य–विषयभक्ति प्रेरक, दार्शनिक एवं ऋतुओं के वर्णन से परिपूर्ण मिलते हैं। कुछ ध्रुवपद वीररस से परिपूर्ण है। श्रृंगार रसात्मक काव्य को ध्रुवपद गायन में वर्जित माना जाता है। इसी कारण ध्रुवपद गायन गम्भीर एवं श्रेष्ठ समझा गया है।

ध्रुवपद की चार वाणियां जिनको घराने (ध्रुपद के) भी कह सकते हैं। वे चार प्रकार की है – इन चारों के नाम – 1. गउहरहार, 2. डागुर, 3. खंडार, 4. नौहार।

इनका संक्षेप में वर्णन इस प्रकार हैं –

गउहरहार – इस वाणी को कुछ लोग गौरहार, गोबरहार, गौडबहार, गौहरहार, गुबरहार आदि नामों आदि से भी पुकारते हैं। दरअसल इस वाणी की उत्पत्ति ग्वालियर से हुई है। ग्वालियर में जिस शैली से ध्रुपद गाये जाते थे उस शैली को 'ग्वालियरी' कहा जाता था। इस वाणी में आँस और मींड की प्रधानता है। पंक्तियों की तुलना में शब्द–संख्या इससे कम होती है। दो अक्षर या दो पदों के बीच के अंतर मींड़ या आँस से भरे जाते हैं। मींड़ व आँस अधिक रहने के कारण यह सिर्फ विलबित लय के ही उपयुक्त है। शांत, श्रृंगार, करूण व वीर रस में इस वाणी के ध्रुपद मिलते हैं जो प्रचलित और अप्रचलित अनेक तालों में निबद्ध है। वर्तमान काल में केवल तीनताल, चारताल, आडाचार ताल, शिखरताल आदि में यह वाणी सीमित है।

डागुर वाणी – इस वाणी के विषय में भी अनेक मत हैं। एक मत से इसका नाम है – 'डागर' डगर का अर्थ है 'पथ'। 'डगर' से ही डागर बन गया होगा। संभव है, 'डाग्र–वाणी' शब्द 'पथ–प्रदर्शन करने वाली वाणी के अर्थ में रूढ़ हो गया है। परन्तु किसी भी प्राचीन ग्रंथ या कोश में 'डागर', शब्द का उल्लेख नहीं है। कुछ प्रचलित मतों के अनुसार 'डागर' का अर्थ है 'बड़ा' अर्थात् यह बड़ी श्रेष्ठ वाणी है।

दिल्ली के पास 'डॉग' नामक एक बड़ा जनपद था। जहाँ गहन जंगल और वन्य पशुओं

का अड्डा था इसलिये इस स्थान का डाग कहा जाता था। मुस्लिम–साम्राज्य विस्तार के साथ–साथ जंगल में 'मंगल' होने लगा और साथ ही शास्त्रीय संगीत की चर्चा भी। स्थानीय लोग 'डागुर' और उसकी भाषा 'डागुरी' शब्द परिवर्तित होकर क्रमानुसार 'डाग' व डागुरी फिर बाद में 'डागुर' हो गया।

ऐसा प्रतीत होता है कि 'बख्तर खाँ' या 'बख्त्यारि खाँ' नामक गुणी की रचना ही डागुर वाणी–ध्रुपद का सर्वप्रथम निदर्षन है। आगे चलकर अन्य गुणियों के द्वारा इसकी परिमार्जना हुई।

खंडार वाणी – राजपूताने के पास 'खंडार' नामक एक स्थान आज भी विद्यमान है। बादशाह बाबर ने जिस समय यहाँ का दुर्ग जीता था, उस समय यह राणा सांगा के अधिकार में था। उसी समय कुछ मुसलमान कलाकार भी वहाँ बसे हुए थे। अतः वहाँ के स्थानीय संगीत के उच्चारण के ढंग तथा शास्त्रीय संगीत के संयोग से खंडार वाणी का जन्म हुआ, ऐसा प्रतीत होता है और डागुर वाणी का विलक्षण प्रभाव रहने के कारण यदि कोई डागुर वाणी को खंडार वाणी का जनक कहे, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

खंडार वाणी ओज तथा वीरतापूर्वक है। इस गमक प्रधान वाणी में कभी–कभी अन्य वाणियों की झलक भी परिलक्षित होती है। इसकी लय मध्य–द्रुत व द्रुत होती है। प्रत्येक मात्रा में गमक–प्रयोग करने के कारण मात्राएँ कुछ अलग–अलग मालूम होती हैं। हल्के रागों में इस वाणी का गायन कर्ण रोचक नहीं होता। एक गीत गाते समय यह अल्पकाल में समाप्त हो जाता है।

नौहारवाणी – इस वाणी के विषय में भी बहुमत पाये जाते हैं। 'मआदन–उल–मूसिकी' के रचियता मुहम्मद करम इमाम का मत है कि 'नोहा' नामक एक स्थान से इस वाणी का जन्म हुआ। कश्मीर के शासक फकरूल्ला भी इसी मत के पोषक हैं। राजपूताने के इस स्थान का असली नाम है – 'नोहार' जिसका अपभ्रंश है – ''नोहा'। हुसैन खाँ नामक एक कलाविद् का फकीरुरुल्ला ने 'नौहार' कहकर उल्लेख किया है। नौहार वाणी और उसकी भाषा क्रमानुसार 'नौहार' व 'नौहारी' कहलाती है। अभी भी नौहार की आंचलिक धुनों में छूट की प्रधानता पाई जाती है। यद्यपि इस गीत को 'नौहार वाणी' नहीं कहा जा सकता, फिर भी उसमें नौहार वाणी की झलक अवश्य मिलती है।

एक मत में नौहार यानि सिंह की गति के साथ भी इस वाणी का संपर्क जोड़ते हैं। कहते हैं, इस वाणी में सिंह के उछलने की गति है।

यह छूट प्रधान वाणी है। अन्य वाणियों के अंश भी इसमें रहते हैं। विलंबित लय की बंदिशों इसमें बहुत ही कम मिलती है। मध्य या द्रुतलय इसमें अधिक मिलती है। अनेक मात्रायुक्त तालों में नौहार वाणी की बंदिशें दुर्लभ हैं। शांत और करूण रस इसमें उपयुक्त नहीं है। अधिकांश में इसका रस है अद्भुत, जैसे कि सप्तस्वरों में पंचम का।

आधुनिक समय में जब ध्रुपद गाया जाता है, तो सबसे पहले आलाप करते हैं फिर ध्रुपद की बंदिश आरम्भ करते हैं इसके पश्चात् विभिन्न लयकारियाँ बोलबाट उपज आदि करते हैं और सरगम तथा बंदिश की आड़, कुआड़, दुगुन, तिगुन आदि की जाती है। आज जो बंदिशें

सुनते हैं उनके प्रसंग भगवान के विभिन्न रूपों पर, उनके बल तेज व शक्ति की प्रशंसा पर भगवत वंदना पर आधारित होते हैं।

इन बानियों में शब्दों का विशेष स्थान और मूल्य था। यह शब्द इसलिए उपयुक्त थे क्योंकि राग के रस के हिसाब से और ध्रुपद की शैली के अनुसार वह अनुकूल और उचित माने जाते थे। इस प्रकार भाषा, भावराग और शैली का पूर्ण संयोग और सहयोग होता था। गौडहार बानी के ध्रुपदों के लिये उन रागों को चुना जाता था जिनमें शांत रस होता था। खंडार बानी में वीर रस होता था और नौहार बानी के प्रबन्धों में अद्‌भुत रस होता था इसलिये उन्हीं रागों को चुना जाता था जिनमें यह अलग–अलग रस होते थे।

ध्रुपद की गान शैली में मर्दागनी गायकी में विविधता का कौशल भरा निर्देशन रहता है। लगातार चलती रहने वाली मर्दागनी से मनुष्य का ऊब जाना स्वाभाविक है। कवायुत करते समय भी बीच–बीच में Standat Case देते हैं। सख्त लगने वाला सेनाधिकारी भी अपने घर में कोमल अतः करूण वाला पिता बन जाने का दृश्य देखने में आता है। अतः ध्रुपदों में से कोमल श्रृंगार प्रधान गीत प्रकार का निर्माण होना स्वाभाविक है। इस श्रृंगार पूर्ति के लिए कृष्ण कन्हैया दौड़े आये। उनकी कई लीलाओं रास क्रीड़ाओं का भी वर्णन इस काव्य का विषय बन गया।

संदर्भ ग्रंथ

1 सुशील कुमार चौबे : *हमारा आधुनिक संगीत,* संस्करण 1975, पृ0 **37**

2 डॉ0 बसंतराव राजोपाध्ये, *संगीत कला विहार,* मार्च 1971, पृ0 **95**

3 डॉ0 सुशील कुमार चौबे : *हमारा आधुनिक संगीत,* संस्करण 1975, पृ0 *79, 80*

4 आदिनाथ उपाध्याय : *संगीत* (पत्रिका) दिसम्बर 1992, पृ0 **26**

5 डॉ0 सुशील कुमार चौबे : *हमारा आधुनिक संगीत,* संस्करण 1975, पृ0 **87**

6 पं0 ओंकार नाथ ठाकुर : *संगीता×जलि,* चतुर्थ भाग, संस्करण 1957, पृ0 **26**

7 लक्ष्मण भट्ट तैलग : *संगीत,* जनवरी–फरवरी 1984, पृ0 **91, 96**

8 गोविन्द राव राजुश्कर : *संगीत शास्त्र पराग,* संस्करण 1982, पृ0 **47**

9 शिव कुमार मित्र : *संगीत,* जनवरी–फरवरी 1982, पृ0 **78–79**

10सुशील कुमार चौबे : *हमारा आधुनिक संगीत,* संस्करण 1975, पृ0 **37**

11डॉ0 बसंत राव राजोपाध्ये : संगीत कला विहार (पत्रिका), मार्च 1971, पृ0 **95**

12मधुबाला सक्सेना : *ख्याल शैली का विकास,* संस्करण 1985, पृ0 **66**